साप्ताहिक
Live not just breaTHE

MPHIN/2015/63220
MP/IDC1528/16-18

दि कार्मिक पोस्ट

वर्ष : 6, अंक : 10 (प्रति बुधवार), इन्दौर, 28 अक्टूबर से 3 नवंबर 2020 पेज : 8 कीमत : 3 रुपये

मध्यप्रदेश का 40 फीसदी जंगल निजी कंपनियों को देने का फैसला

भारत सरकार हो या राज्य सरकारें, हर वक्त उनका एक ही नारा होता है आदिवासियों का कल्याण। लेकिन उनका कल्याण करते-करते ये सरकारें अकसर उनको उनके गांव-खेत-खलिहान और उनके जंगलों से बेदखल कर देती हैं। इसका ताजा उदाहरण मध्यप्रदेश का है। यहां जलवायु परिवर्तन से होने वाले दुष्प्रभावों को कम करने, राज्य के जंगलों की परिस्थितिकी में सुधार करने और आदिवासियों की आजीविका को सुदृढ़ करने के नाम पर राज्य के कुल 94,689 लाख हैक्टेयर वन क्षेत्र में से 37,420 लाख हैक्टेयर क्षेत्र को निजी कंपनियों को देने का निर्णय लिया गया है।

इस संबंध में मध्यप्रदेश के सतपुड़ा भवन स्थित मुख्य प्रधान वन संरक्षक द्वारा अधिसूचना जारी की गई है। इस संबंध में भोपाल के पर्यावरणविद सुभाष पांडे ने बताया, राज्य के आधे से अधिक बिगड़े वन क्षेत्र को सुधारने के लिए जंगलों की जिस क्षेत्र को अधिसूचित किया गया है, वास्तव में वहां आदिवासियों के घर-द्वार, खेत और चारागाह हैं। इसे राज्य सरकार बिगड़े वन क्षेत्र की संज्ञा दे कर निजी क्षेत्रों को सौंपने जा रही है।

ध्यान रहे कि इस प्रकार के बिगड़े जंगलों को सुधारने के लिए राज्य भर के जंगलों में स्थित गांवों में बकायदा वन ग्राम समितियां बनी हुई हैं और इसके लिए वन विभाग के पास बजट का भी प्रावधान है। इस संबंध में राज्य के वन विभाग के पूर्व सब डिविजन ऑफिसर संतदास तिवारी ने बताया कि जहां आदिवासी रहते हैं तो उनके निस्तार की जमीन या उनके घर के आसपास तो हर हाल में जंगल नहीं होगा। आखिर आप अपने घर के आसपास तो जंगल या पेड़ों को साफ करेंगे और मवेशियों के लिए चारागाह भी बनाएंगे। अब सरकार इसे ही बिगड़े हुए जंगल बताकर अधिग्रहण करने की तैयारी है। जबकि राज्य सरकार का तर्क है कि बिगड़े हुए जंगल को ठीक करके यानी जंगलों को सघन बना कर ही जलवायु परिवर्तन और परिस्थितिकीय तंत्र में सुधार संभव है।

इस संबंध में मध्यप्रदेश में वन क्षेत्रों पर अध्ययन करने वाले कार्यकर्ता राजकुमार सिन्हां ने बताया कि मध्यप्रदेश की सरकार ने 37 लाख हैक्टेयर बिगड़े वन क्षेत्रों को पब्लिक प्राइवेट पार्टनरशीप (पीपीपी) मोड पर निजी कंपनियों को देने का निर्णय लिया है। वह कहते हैं कि यह कौन सा वन क्षेत्र है? इसे जानने और समझने की जरूरत है। प्रदेश के कुल 52,739 गांवों में से 22,600 गांव या तो जंगल में बसे हैं या फिर जंगलों की सीमा से सटे हुए हैं।

मध्यप्रदेश के जंगल का एक बड़ा हिस्सा आरक्षित वन है और दूसरा बड़ा हिस्सा राष्ट्रीय उद्यान, अभयारण्य, सेंचुरी आदि के रूप में जाना जाता है। शेष क्षेत्र को बिगड़े वन या संरक्षित वन कहा जाता है। इस संरक्षित वन में स्थानीय लोगों के अधिकारों का दस्तावेजीकरण किया जाना है, अधिग्रहण नहीं। यह बिगड़े जंगल स्थानीय आदिवासी समुदाय के लिए बहुत महत्वपूर्ण आर्थिक संसाधन हैं, जो जंगलों में बसे हैं और जिसका इस्तेमाल आदिवासी समुदाय अपनी निस्तार जरूरतों के लिए करते हैं।

एक नवंबर, 1956 में मध्यप्रदेश के पुनर्गठन के समय राज्य की भौगोलिक क्षेत्रफल 442.841 लाख हैक्टेयर था, जिसमें से 172.460 लाख हैक्टेयर वनभूमि और 94.781 लाख हैक्टेयर सामुदायिक वनभूमि दर्ज थी। पांडे ने बताया कि उक्त संरक्षित भूमि को वन विभाग ने अपने वर्किंग प्लान में शामिल कर लिया, जबकि इन जमीनों के बंटाईदारों, पट्टेधारियों या अतिक्रमणकारियों को हक दिए जाने का कोई प्रयास नहीं किया गया। वह कहते हैं कि वन विभाग ने जिन भूमि को अनुपयुक्त पाया उसमें से कुछ भूमि 1966 में राजस्व विभाग को अधिक अन्न उपजाऊ योजना के तहत हस्तांतरित किया, वहीं अधिकतर अनुपयुक्त भूमि वन विभाग ने ग्राम वन के नाम पर अपने नियंत्रण में ही रखा। ध्यान रहे कि अभी इसी संरक्षित वन में से लोगों को वन अधिकार कानून 2006 के अन्तर्गत सामुदायिक वन अधिकार या सामुदायिक वन संसाधनों पर अधिकार दिया जाने वाला है।

सिन्हां सवाल उठाते हैं कि अगर ये 37 लाख हैक्टेयर भूमि उद्योगपतियों के पास होगी तो फिर लोगों के पास कौन सा जंगल होगा? पांचवीं अनुसूची के क्षेत्रों में पेसा कानून प्रभावी है जो ग्राम सभा को अपने प्राकृतिक संसाधनों पर नियंत्रण का अधिकार देता है। क्या पीपीपी मॉडल में सामुदायिक अधिकार प्राप्त ग्राम सभा से सहमति ली गई है? वन अधिकार कानून द्वारा ग्राम सभा को जंगल के संरक्षण, प्रबंधन और उपयोग के लिए जो सामुदायिक अधिकार दिया गया है उसका क्या होगा?

हिमालय में आ सकता है बड़ा भूकंप, वैज्ञानिकों ने की टेक्टोनिक रूप से सक्रिय नए क्षेत्र की पहचान

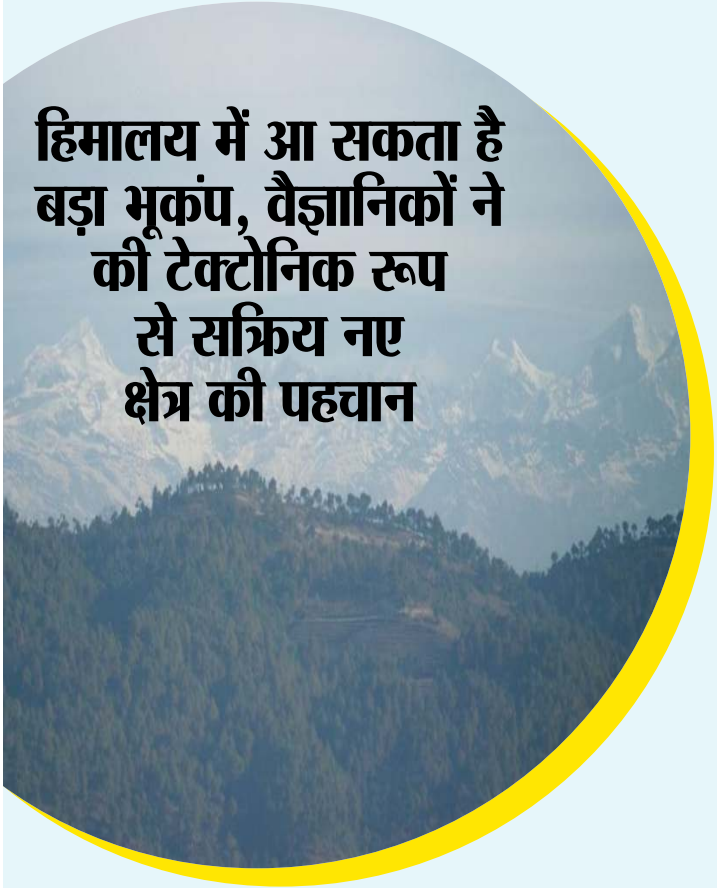

वैज्ञानिकों ने हिमालय के लद्दाख क्षेत्र में ऐसे जोन की पहचान की है जो टेक्टोनिक रूप से सक्रिय है7 इस क्षेत्र में भारतीय और एशियाई प्लेट्स आपस में मिलती है7 जिनके बारे में अब तक यही माना जाता था कि इस जोन में मौजूद थ्रस्ट बंद है, लेकिन नए शोध से पता चला है कि इस क्षेत्र में प्लेट्स सक्रिय हैं जिनमें भूकंप आ सकता है7 यह जानकारी भूकंप के अध्ययन और उसकी भविष्यवाणी, पर्वतीय श्रृंखलाओं की भूकंपीय संरचना को समझने और उसके विकास को जानने में महत्वपूर्ण साबित हो सकती है7

यह शोध देहरादून के वाडिया इंस्टीट्यूट ऑफ हिमालयन जियोलॉजी के वैज्ञानिकों द्वारा किया गया है, जोकि भारत सरकार के विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग के तहत एक स्वायत्त संस्थान है7 जर्नल टेक्नोफ़िज़क्सि में छपे इस शोध में इस इलाके का विस्तृत मानचित्रण किया गया है7 जिसकी मदद से इस क्षेत्र की भूवैज्ञानिक विशेषताओं का विश्लेषण किया गया है7

इस अध्ययन के लिए लद्दाख के सुदूर क्षेत्रों की मैपिंग की गई है, जो हिमालय का सबसे भीतरी भाग है। जिसमें स्पष्ट हो गया है कि हिमालय का सिवनी क्षेत्र जिसके बारे में यह मान्यता थी कि वो पूरी तरह से बंद है, लेकिन शोध के अनुसार यह टेक्टोनिक रूप से सक्रिय है7 भूवैज्ञानिकों के अनुसार तलछट से बने नदी तट झुके हुए थे और कई जगह से दरार दबाव के कारण टूट गई थी7 नदियों का ऊपरी हिस्सा उठ गया था7 वहीं उसके निचले हिस्से की चट्टानों में बदलाव आ गया था और वो काफी कमजोर हो गई थी7

जब इन विकृत भूवैज्ञानिक विशेषताओं का देहरादून की लैब में परिक्षण किया गया तो पता चला कि सिंधु का सिवनी ज़ोन (आईएसजेड) पिछले 78000 वर्षों से नव-टेक्टोनिक रूप से सक्रिय रहा है7 अनुमान है कि उप्शी गांव के पास 2010 में 4.0 रिक्टर स्केल का भूकंप आया था7 जिसके लिए थ्रस्ट (दरार) के कारण चट्टानों के टूटने को जिम्मेवार माना था। हिमालय में पहले भी कई भूकंप आते रहे हैं जिनके लिए यह थ्रस्ट मुख्य रूप से जिम्मेवार रहे हैं7 हिमालयी क्षेत्र में मेन सेंट्रल थ्रस्ट महान एवं लघु हिमालय के मध्य, मेन बाउन्ड्री थ्रस्ट लघु एवं शिवालिक हिमालय के मध्य है तथा मेन फ्रंटल थ्रस्ट शिवालिक तथा विशाल मैदान के मध्य स्थित है। स्थापित मॉडलों के अनुसार, मेन फ्रंटल थ्रस्ट (एमएफटी) को छोड़कर यह दोनों भ्रंश (थ्रस्ट) पूरी तरह बंद हैं7 यही वजह है कि हिमालय में होने वाली सभी विनाशकारी हलचलें मेन फ्रंटल थ्रस्ट (एमएफटी) के साथ-साथ ही घट रही हैं। हाल ही में सिस्मोलॉजिकल रिसर्च लेटर्स जर्नल में छपे एक अन्य शोध के अनुसार हिमालय में बड़ा भूकंप कभी भी आ सकता है। माना जा रहा है कि उसकी तीव्रता रिक्टर स्केल पर आठ या उससे भी अधिक हो सकती है। वैज्ञानिकों का कहना है कि इस भूकंप के कारण भारत सहित आसपास के घनी आबादी वाले देशों में जानमाल का बड़ा नुकसान हो सकता है। हालांकि ये भूकंप कब आएंगे इस बात को लेकर अभी तक कुछ स्पष्ट नहीं किया गया है।

16 महीने में 17 देशों की यात्रा करने वाले मंगोलियाई कुकू पक्षी ओनन को बेहद रास आया भारत

भारत पूरी दुनिया में प्रवासी पक्षियों का पंसीददा पर्यटन स्थल है। हालांकि कुछ वर्षों से भारत में लगातार हो रही प्रवासी पक्षियों की मौत और दुर्घटनाओं और बिगड़ती हुई नैसर्गिक प्राकृतिक अवस्थाओं ने प्रवासी पक्षियों के सरंक्षण को लेकर चिंता की लकीरें भी बढ़ाई हैं। बहरहाल भारत के लिए बेहद खुशी की बात है कि हाल ही में दुनियाभर में लोकप्रियता बटोरने वाले ओनन नाम के मंगोलियाई पक्षी कुकू को भी भारत ही सबसे ज्यादा रास आया है।

16 महीनों में 17 देशों की 33 सरहदों को पार करके सफलतापूर्वक करीब 40 हजार किलोमीटर की यात्रा करने वाले ओनन ने सबसे ज्यादा वक्त भारत में बिताया। वहीं, ओनन के शरीर में फिट किए गए डिवाइस ने एक अक्तूबर को आखिरी सिग्नल भेजा था। उसके बाद से 15 अक्तूबर तक कोई संदेश न मिलने पर यह माना जा रहा है कि इतनी लंबी यात्रा तय करने वाला दुनिया का वाहिद ओनन शायद अब हमारे बीच नहीं है।

मंगोलियन कुकू प्रोजेक्ट के तहत 8 जून, 2019 को टीम कुकू तैयार हुई थी। प्रवास करने वाली इस पक्षियों की टीम में ओनन भी शामिल था। ओनन एक स्थानीय नदी का नाम है। टीम कुकू में एक पक्षी को भी यह नाम दिया गया था जो अब सदा के लिए जेहन में रहेगा। प्रवासी पक्षियों की टीम के सभी सदस्यों की पीठ पर एक डिवाइस टैग लगया गया था। यह टाइगर सेंसस के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले कॉलर टैग की तरह था जो प्रवासी पक्षियों की गतिविधियों और उनकी हलचल का लगातार सिग्नल भेजता रहा। इन संकेतों से ही हमें पता चला कि ओनन ने बिना रुके-बिना थके 64 घंटों में 3500 किलोमीटर से ज्यादा की यात्रा तय की। कुकू ओनन को याद करते हुए इंटरनेट पर लोगों ने उसे याद भी किया।

ओनन का पीछा होता रहा। भारत में मध्य प्रदेश के रतलाम जिले के पास भी कुछ लोग ओनन का पीछा करते हुए पहुंचे। वहीं, इंटरनेशनल यूनियन फॉर कंजर्वेशन ऑफ नेचर (आईसीयूएन) के सदस्य और आईएफएस प्रवीण कासवान ने ओनन पक्षी की प्रवास यात्रा को लगातार ट्रैक किया। भारत में उसे इंटरनेट पर लोकप्रिय भी बनाया। उन्होंने डाउन टू अर्थ को बताया कि यह अध्ययन बताता है कि कितने आश्चर्यजनक तरीके से पक्षियों की यह प्रवास यात्रा पूरी होती है और यह पक्षी ही हैं जो दुनिया को कैसे एक दूसरे से जोड़ते हैं। संरक्षण हमेशा सीमाओं को पार होकर करने वाली चीज है। ओनन ने हमे बहुत सिखाया है और वह हमेशा जीवित रहेगा।

प्लास्टिक प्रदूषण के खिलाफ युद्ध पृथ्वी पर इस क्षेत्र में एक वास्तविकता है

प्लास्टिक के खिलाफ युद्ध पर्यावरण के लिए बड़े खतरों की निगरानी कर सकता है। पर्यावरण विज्ञान, इंजीनियरिंग, उद्योग, नीति और दान के विशेषज्ञों के सहयोग से, हमने पत्रिका वायर्स वाटर में एक पत्र लिखा है, जो चिंताओं को उजागर करता है कि प्लास्टिक प्रदूषण के खिलाफ अपेक्षाकृत आसान कार्रवाई पर्यावरणीय उदासीनता का मुखौटा लगा सकती है, और लोगों को गुमराह किया जा रहा है। अलार्म की सुर्खियों में, भावनात्मक तस्वीरें और ग्रीनवाशिंग।

प्लास्टिक एक अविश्वसनीय रूप से उपयोगी और बहुमुखी सामग्री है जिस पर आधुनिक समाज का बहुत कुछ निर्भर करता है, फिर भी यह दिन के सबसे सामयिक पर्यावरणीय मुद्दों में से एक बन गया है। पिछले कुछ वर्षों में, प्लास्टिक प्रदूषण ने पर्यावरण, जलवायु परिवर्तन और जैव विविधता के नुकसान जैसे कुछ सबसे बड़े खतरों के समान स्तरों पर व्यक्तियों, संगठनों और सरकारों से कार्रवाई को प्रोत्साहित किया है। यह चिंता अच्छी तरह से स्थापित है। प्लास्टिक प्रदूषण भयावह है, वन्य जीवन को उलझा सकता है, निगला जा सकता है और पेट और आंतों को अवरुद्ध कर सकता है, और हानिकारक रसायनों को ले जा सकता है। यह छोटे टुकड़ों में टूट सकता है, अंततः माइक्रोप्लास्टिक – 5 मिमी से छोटे टुकड़े – जो खाद्य श्रृंखला को जमा कर सकता है। यह दुनिया के कुछ सबसे दूरदराज के हिस्सों में भी पाया गया है। लेकिन यद्यपि प्लास्टिक के प्रति व्यापक शत्रुता है, लेकिन वे ऐसी सामग्रियों का समूह हैं, जिनके बिना हम नहीं रह सकते, और यह कि हमें बिना नहीं रहना चाहिए। हम तर्क देते हैं कि प्लास्टिक स्वयं समस्या का कारण नहीं है, और यह कि इन जोखिमों को पहचानने में विफल होने से पर्यावरण और सामाजिक तबाही अधिक होती है।

कुछ प्रदूषण कम दिखाई देता है कुछ कम दिखाई देने वाले प्रदूषकों के पर्यावरणीय प्रभावों को अच्छी तरह से जाना जाता है। कार्बन डाइऑक्साइड और मीथेन जैसे ग्रीनहाउस गैस ग्लोबल वार्मिंग में योगदान करते हैं। वायुमंडल में महीन कण सांस की बीमारियों से जुड़े हैं और स्मॉग का एक प्रमुख घटक है। और चेरनोबिल परमाणु आपदा से विकिरण वन्यजीवों को प्रभावित करने के लिए जारी है जो इसके बहिष्करण क्षेत्र में ले गए हैं। लेकिन समाज पर्यावरण को अधिक से अधिक तरीकों से प्रदूषित करता है क्योंकि अधिकांश लोग जागरूक हैं, और प्लास्टिक प्रदूषण के लिए चिंता करने से बहुत पहले से प्रचलित है। कृषि पोषक तत्वों से अधिक संवर्धन और कीटनाशक प्रदूषण की ओर ले जाती है। इलेक्ट्रॉनिक्स, वाहनों और इमारतों को कई प्रकार की जहरीली धातुओं की आवश्यकता होती है जो अपने जीवन के अंत में पर्यावरण में लीक हो जाती हैं और जहां से खनन किया जाता है वहां से उड़ाया और धोया जाता है। हमारे शरीर द्वारा नालियों को धोया जाता है और पूरी तरह से मेटाबोलाइज (उपयोग नहीं किया जाता) भी नदियों और झीलों में अपना रास्ता खोज सकता है।

रोजमर्रा की खपत की ये कम ज्ञात वास्तविकताएं पर्यावरण को नीचा दिखाती हैं और वन्यजीवों के लिए विषाक्त हैं। जैसा कि रसायनों के लिए होता है, प्लास्टिक जैसे कणों के बजाय, ये प्रदूषक भी प्लास्टिक की तुलना में कहीं अधिक मोबाइल हैं और जहरीली धातुओं के मामले में, अधिक स्थायी हैं।

जंगलों के 5 किलोमीटर के दायरे में बसे हैं 160 करोड़ लोग, वैज्ञानिकों ने तैयार किया नक्शा

वैज्ञानिकों द्वारा तैयार किए गए नए वैश्विक मानचित्र से पता चला है कि दुनिया भर में जंगलों के आस-पास 5 किलोमीटर के दायरे में करीब 160 करोड़ लोग बसे हुए हैं। यह विश्लेषण 200। से 2012 के बीच एकत्र किए गए आंकड़ों पर आधारित है। वन अर्थ नामक जर्नल में प्रकाशित इस शोध के अनुसार इस आबादी का करीब 64.5 फीसदी हिस्सा ट्रॉपिकल देशों में रहता है। वहीं विश्व बैंक द्वारा निम्न या मध्यम आय के रूप में वर्गीकृत देशों में इसकी ।1.3 फीसदी आबादी बसती है।

इस शोध से जुड़े प्रमुख शोधकर्ता और कोलोराडो बोल्डर विश्वविद्यालय से सम्बन्ध रखने वाले पीटर न्यूटन के अनुसार वैश्विक स्तर पर जंगलों के आसपास कितने लोग रहते हैं इस बारे में सही-सही कोई आंकड़े मौजूद नहीं हैं। यह शोध इस बारे में किया गया पहला प्रयास है जिसकी मदद से जंगलों के आसपास रहने वाले लोगों के लिए आजीविका का प्रबंध करने वाली परियोजनाओं में मदद मिल सकती है।

शोधकर्ताओं के अनुसार जो लोग अपनी आय के लिए जंगलों और उसके संसाधनों पर निर्भर रहते हैं उन्हें वन-निर्भर लोगों के रूप में जाना जाता है। हालांकि विश्व बैंक द्वारा लगाए गए अनुमान के अनुसार संयोग से जंगलों के पास रहने वाले लोगों की संख्या वनों पर आश्रित लोगों की आबादी से मेल खाती है, जोकि करीब 160 करोड़ है। लेकिन जंगलों के पास रहने का यह मतलब नहीं है कि वो लोग अपनी जीविका के लिए जंगलों पर निर्भर हैं। न्यूटन के अनुसार वनों पर आश्रित लोगों से मतलब उनसे हैं जो वनों और उसके संसाधनों पर निर्भर हैं या फिर उनसे कुछ लाभ प्राप्त करते हैं। जबकि वनों के पास रहने वाले

लोगों का तात्पर्य केवल जंगलों और उसके पास रहने वाले लोगों के स्थानिक सम्बन्ध से है।

जंगलों के आसपास रहने वाले लोगों की उनके संरक्षण में होती है महत्वपूर्ण भूमिका

न्यूटन के अनुसार जंगलों में और उसके आसपास बड़ी संख्या में लोग रहते हैं। जिनकी जंगलों के सतत विकास और संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। ऐसे में जंगलों को प्रभावित करने वाले कार्यक्रम, परियोजनाएं और नीतियां इन लोगों को भी प्रभावित करती हैं।

जंगलों और उसके आसपास रहने वाले लोगों के बीच के स्थानिक संबंध को जानने के लिए न्यूटन और उनके सहयोगियों ने वर्ष 2000 से 2012 के बीच फारेस्ट कवर और जनसंख्या के घनत्व सम्बन्धी आंकड़ों का विश्लेषण किया है। इसके लिए जंगलों की सीमा के 5 किमी के दायरे में रहने वाले लोगों को शामिल किया गया है। साथ ही जिन क्षेत्रों में 5 एकड़ जमीन पर यदि 50 फीसदी से ज्यादा क्षेत्र पर यदि वृक्ष हैं तो उसे जंगल माना है। इसके साथ ही उन्होंने जिन क्षेत्रों में प्रति वर्ग किलोमीटर में 1,500 या उससे अधिक आबादी रहती है उसे वन क्षेत्र से बाहर रखा है। शोधकर्ताओं का मानना है कि यह शोध अन्य शोधकर्ताओं और नीतिनिर्माताओं के लिए मददगार हो सकता है। जिसकी मदद से वो इन क्षेत्रों के विषय में सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विश्लेषण कर सकते हैं। साथ ही इसकी मदद से जिन क्षेत्रों से जुड़े स्थानिक आंकड़े उपलब्ध हैं, उन स्थानों पर विश्लेषण किया जा सकता है। साथ ही इससे जंगलों के आसपास और उसपर निर्भर लोगों की स्थिति का जायजा लिया जा सकता है और उससे जुड़ी नीतियां बनाई जा सकती हैं।

भारत में अब पानी की बर्बादी और बेजा इस्तेमाल एक दंडात्मक कसूर

नईदिल्ली। अब देश में कोई भी व्यक्ति और सरकारी संस्था यदि भूजल स्त्रोत से हासिल होने वाले पीने योग्य पानी (पोटेबल वाटर) की बर्बादी या बेजा इस्तेमाल करता है तो यह एक दंडात्मक दोष माना जाएगा। इससे पहले भारत में पानी की बर्बादी को लेकर दंड का कोई प्रावधान नहीं था। घरों की टंकियों के अलावा कई बार टैंकों से जगह-जगह पानी पहुंचाने वाली नागरिक संस्थाएं भी पानी की बर्बादी करती है।

देश में प्रत्येक दिन 4,84,20,000 करोड़ घन मीटर यानी एक लीटर वाली 48.42 अरब बोतलों जितना पानी बर्बाद हो जाता है, जबकि इसी देश में करीब 16 करोड़ लोगों को साफ और ताजा पानी नहीं मिलता। वहीं, 60 करोड़ लोग जलसंकट से जूझ रहे हैं।

सीजीडब्ल्यूए ने पानी की बर्बादी और बेजा इस्तेमाल पर रोक लगाने के लिए 08 अक्तूबर, 2020 को पर्यावरण (संरक्षण) कानून, 1986 की धारा पांच की शक्तियों का इस्तेमाल करते हुए प्राधिकरणों और देश के सभी लोगों को संबोधित करते हुए दो बिंदु वाले अपने आदेश में कहा है =

1. इस आदेश के जारी होने की तारीख से संबंधित नागरिक निकाय जो कि राज्यों और संघ शासित प्रदेशों में पानी आपूर्ति नेटवर्क को संभालती हैं और जिन्हें जल बोर्ड, जल निगम, वाटर वर्क्स डिपार्टमेंट, नगर निगम, नगर पालिका, विकास प्राधिकरण, पंचायत या किसी भी अन्य नाम से पुकारा जाता है, वो यह सुनिश्चित करेंगी कि भूजल से हासिल होने वाले पोटेबल वाटर यानी पीने योग्य पानी की बर्बादी और उसका बेजा इस्तेमाल नहीं होगा। इस आदेश का पालन करने के लिए सभी एक तंत्र विकसित करेंगी और आदेश का उल्लंघन करने वालों के खिलाफ दंडात्मक उपाय किए जाएंगे।

2. देश में कोई भी व्यक्ति भू-जल स्त्रोत से हासिल पोटेबल वाटर का बेजा इस्तेमाल या बर्बादी नहीं कर सकता है।

एनजीटी में याचिकाकर्ताओं की ओर से कानूनी पक्ष रखने वाले अधिवक्ता आकाश वशिष्ट ने डाउन टू अर्थ से कहा कि देश में भू-जल संरक्षण के लिए सीजीडब्ल्यूए का यह आदेश एक ऐतिहासिक कदम है। हमने यह मुद्दा एनजीटी में बीते वर्ष उठाया था, इसके बाद अब यह मामला सही दिशा में बढ़ चुका है। अभी तक आवासीय और व्यावसायिक आवासों से ही नहीं बल्कि कई पानी आपूर्ति करने वाले सरकारी टैंकों से भू-जल दोहन के जरिए निकाला गया पीने योग्य पानी (पोटेबल वाटर) बर्बाद होता रहता है। किसी तरह का प्रावधान न होने से पानी बर्बाद करने वाली संस्थाएं व व्यक्ति को इस बात के लिए दंडित भी नहीं किया जा सकता था।

साफ पानी की बर्बादी और बेजा इस्तेमाल पर दंडात्मक आदेश के जारी करने और केंद्रीय मंत्रालयों व राज्यों से समयबद्ध कार्य योजना मिलने के आश्वासन के बाद एनजीटी ने 31 अगस्त, 2020 को मामले का निस्तारण कर दिया था। वहीं, इससे पहले 15 अक्तूबर, 2019 को एनजीटी में राजेंद्र त्यागी और फ्रैंड्स संस्था का यह मामला जब एनजीटी ने सुना तो पाया था कि केंद्रीय जल शक्ति मंत्रालय और दिल्ली जल बोर्ड के जवाबों में पानी की बर्बादी और बेजा इस्तेमाल को रोकने के लिए कोई प्रभावी नीति का जिक्र नहीं किया गया है। एनजीटी ने कहा था प्राधिकरणों के जवाबी हलफनामे बेहद सामान्य और बेकार हैं। राज्यों और संघ शासित प्रदेशों को पत्र लिखने के बजाए एक समयबद्ध कार्ययोजना और निगरानी के साथ दंडात्मक प्रावधानों वाली प्रभावी कार्रवाई योजना बनाई जानी चाहिए।

एनजीटी ने कहा था कि पर्यावरण कानून का पालन आदेशों का उल्लंघन करने वाले लोगों से बटोरी गई टोकन मनी की रिकवरी भर से नहीं हो जाता है। ...पॉल्यूटर पेज प्रिंसिपल का कोई विकल्प नहीं है।

भारत में 3 करोड़ लोगों पर मंडरा रहा है आर्सेनिक का खतरा

पीने का पानी है वजह

भारत में 1.8 से 3 करोड़ लोगों पर आर्सेनिक का गंभीर खतरा मंडरा रहा है। जिसके लिए पीने का पानी जिम्मेवार है। देश की एक बड़ी आबादी आज भी पीने के पानी के लिए भूमिगत जल पर निर्भर है। आज भी भारत में भूजल पीने के पानी और सिंचाई का एक महत्वपूर्ण स्त्रोत है। देश में धीरे-धीरे न केवल जिसकी मात्रा में कमी आ रही है, साथ ही इसकी गुणवत्ता में भी गिरावट आती जा रही है। जिसके लिए काफी हद तक आर्सेनिक भी जिम्मेवार है। यह जानकारी हाल ही में किए एक शोध में सामने आई है, जोकि इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एनवायर्नमेंटल रिसर्च एंड पब्लिक हेल्थ में प्रकाशित हुआ है। जिसे मैनचेस्टर, पटना और ज्यूरिख के शोधकर्ताओं द्वारा संयुक्त रूप से किया गया है।

इस शोध से यह भी पता चला है कि देश में गंगा और ब्रह्मपुत्र नदी घाटियों में भूजल के अंदर उच्च मात्रा में आर्सेनिक मौजूद है, जोकि स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। शोध के अनुसार उत्तर भारत में आर्सेनिक की मात्रा खतरनाक स्तर पर है। इसके साथ ही देश के कई अन्य इलाकों में आर्सेनिक की मात्रा तय मानकों से कहीं ज्यादा है। जिसमें दक्षिण-पश्चिम और मध्य भारत के कई हिस्से शामिल हैं। शोध के अनुसार इससे पहले इन क्षेत्रों में आर्सेनिक के सबूत नहीं मिले थे।

इससे पहले 18 सितम्बर 2020 को जल शक्ति मंत्रालय द्वारा संसद में दिए आंकड़ें भी इस बात की पुष्टि करते हैं। इन आंकड़ों के अनुसार 2015 में 1,800 बस्तियां आर्सेनिक से प्रभावित थी जो 2017 में बढ़कर 4,421 हो गई हैं। जिसका मतलब है कि पिछले पांच वर्षों में उनमें 145 फीसदी की वृद्धि देखी गई है। यह बस्तियां मुख्य रूप से असम, बिहार, पश्चिम बंगाल, पंजाब और उत्तर प्रदेश में हैं। झारखंड, जिसमें 2015 में ऐसी कोई बस्ती नहीं थी, अब वहां की दो बस्तियां आर्सेनिक प्रभावित हैं। आंकड़ों के अनुसार देश में असम में सबसे ज्यादा बस्तियां आर्सेनिक से ग्रस्त हैं जिनकी संख्या 1853 है। इसके बाद पश्चिम बंगाल का नंबर है जहां 1,383 बस्तियां इससे पीड़ित हैं। वहीं देश के सबसे बड़े सूबे उत्तर प्रदेश के 63 जिलों के भूजल में मानक से अधिक फ्लोराइड, 25 जिलों के भूमिगत जल में आर्सेनिक तथा 18 जिलों के भूजल में फ्लोराइड एवं आर्सेनिक दोनों मानक से कई गुना अधिक है। यह जानकारी वाटर एण्ड सेनिटेशन मिशन, उप्र द्वारा एक आरटीआई के जबाव में सामने आई थी। जबकि एनजीटी में सबमिट एक रिपोर्ट के अनुसार उत्तर प्रदेश में 707 बस्तियां आर्सेनिक प्रभावित हैं। जबकि बिहार के 18 जिलों के भूगर्भ जल में आर्सेनिक का जहर फैला हुआ है। एक अनुमान के मुताबिक बिहार के करीब 1 करोड़ लोग आर्सेनिक युक्त पानी पी रहे हैं। कई इलाकों में तो पानी में आर्सेनिक की मात्रा 1,000 पीपीबी से ज्यादा है, जो सामान्य से 20 गुना अधिक है।

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक सोनल मेहता केलिए प्रतीक्षा ग्राफिक्स, 127 देवी अहिल्या मार्ग, इंदौर (म.प्र.) से मुद्रित एवं 209-बी शहनाई रेसीडेंसी-2 कनाड़िया रोड इंदौर (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक: डॉ. सोनल मेहता फोन : 0731-2595008 Mail.sonal12mehta@yahoo.co.in 9755040008